वर्ष ३६ अंक ०३ जून २०१२

ISSN 2277 - 7865

मूल्य ५०.०० रुपये

तित्थयर

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

Suvigya & Saurabh Boyed

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३६ अंक - ०३ जून २०१२

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 007
Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	पउमचरियं : एक सर्वेक्षण	डॉ. सागरमल जैन	७७
२.	कुवलय माला		९४

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : एलोरा की गुफा में उत्कीर्ण देवी अम्बिका की मूर्ति।

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

पउमचरियं : एक सर्वेक्षण

रामकथा का प्राचीन एवं उत्कृष्ट जैन ग्रन्थ

प्रो. सागरमल जैन

रामकथा का व्यापकता :

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के प्राण-पुरुष रहे हैं। उनके जीवन आदर्शों एवं उपदेशों ने भारतीय संस्कृति को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। भारत एवं भारत के पूर्वी निकटवर्ती देशों में आज भी राम-कथा के मंचन की परम्परा जीवित है। हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म परम्परा में राम-कथा सम्बन्धी प्रचुर उल्लेख पाये जाते हैं। राम-कथा सम्बन्धी ग्रन्थों में वाल्मिकी रामायण प्राचीनतम ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ हिन्दू परम्परा में प्रचलित राम-कथा का आधार ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त संस्कृत में रचित पद्मपुराण और हिन्दी में रचित रामचरितमानस भी राम-कथा सम्बन्धी प्रधान ग्रन्थ है, जिन्होंने हिन्दू जन-जीवन को प्रभावित किया है। जैन परम्परा में रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों में प्राकृत भाषा में रचित विमलसूरि का **पउमचरियं** एक प्राचीनतम प्रमुख ग्रन्थ है। लेखकीय प्रशस्ति के अनुसार यह ई. सन् की प्रथम शती की रचना है। वाल्मिकी की रामायण के पश्चात् रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों में यही प्राचीनतम ग्रन्थ है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी में रचित रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ इसके परवर्ती ही है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कन्नड़ एवं हिन्दी में जैनों का रामकथा सम्बन्धी साहित्य विपुल मात्रा में है। जिसकी चर्चा हम आगे विस्तार से करेंगे। बौद्ध परम्परा में रामकथा मुख्यतः जातक कथाओं में वर्णित है। जातक कथाएँ मुख्यतः बोधिसत्व के रूप में बुद्ध के पूर्वभवों की चर्चा करती है। इन्हीं में दशरथ जातक में रामकथा का उल्लेख है। बौद्ध परम्परा में रामकथा सम्बन्धी कौन-कौन से प्रमुख ग्रन्थ लिखे गये इसकी जानकारी का अभाव ही हैं।

रामकथा सम्बन्धी जैन साहित्य–

जैन साहित्यकारों ने विपुल मात्रा में रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की है, इतमें दिगम्बर लेखकों की अपेक्षा श्वेताम्बर लेखक और उनके ग्रन्थ अधिक रहे हैं। जैनों में रामकथा सम्बन्धी प्रमुख ग्रन्थ कौन से रहे हैं, इसकी सूची निम्नानुसार है

क्रं.	ग्रन्थ	लेखक	भाषा	काल
1.	पउमचरियं	विमलसूरि (श्वे)	प्राकृत	प्रायः ईसा की दूसरी शती
2.	वसुदेव हिण्डी	संघदासगणि (श्वे)	प्राकृत	ई. स. 609
3.	पद्मपुराण	रविषेण (दि.)	संस्कृत	ई. स. 678
4.	पउमचरियं	स्वयंभू (दि.)	अपभ्रंश	प्रायः ई.स.8वीं शती (मध्य)
5.	चउपन्न महापुरिसचरियं	शीलडक (श्वे)	प्राकृत	ई. सन् 868
6.	उत्तरपुराण	गुणभद्र (दि.)	संस्कृत	ई. स. प्राय 9वीं शती
7.	बृहत्कथाकोष	हरिषेण (दि.)	संस्कृत	ई. स. 931-932
8.	महापुराण	पुष्पदंत (दि.)	अपभ्रंश	ई. सन् 965
9.	कहावली	भद्रेश्वर (श्वे)	प्राकृत	प्रायः ई. स.11वीं शती
10.	त्रिषष्टीशलाका पुरुषचरित	हेमचन्द्र (श्वे)	संस्कृत	प्रायः ई. स.12वीं शती
11.	योगशास्त्र स्वोपज्ञ वृत्ति	हेमचन्द्र (श्वे)	संस्कृत	प्रायः ई. स.12वीं शती
12.	शत्रुंजयमहात्म्य	धनेश्वरसूरि (श्वे)	संस्कृत	प्रायः ई. स.13वीं शती
13.	पुण्यचन्द्रोदय पुराण	कृष्णदास (दि.)	संस्कृत	ई. स. 1528
14.	रामचरित	देवविजयगणि (श्वे)	संस्कृत	ई. स. 1596
15.	लघुत्रिष्टि शलाका पुरुष चरित	मेधविजय (श्वे)	संस्कृत	प्रायः ई. स.17वीं शती

इनमें एकाध अपवाद को छोड़कर शेष सभी ग्रन्थ प्रायः प्रकाशित है। इनके अतिरिक्त भी रामकथा सम्बन्धी अनेक हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख जिनरत्नकोश में मिलता है, जिनकी संख्या 30 से अधिक है। इनमें हनुमानचरित, सीताचरित आदि भी सम्मिलित है। विस्तारभय से यहाँ इन सबकी चर्चा अपेक्षित नहीं है। आधुनिक युग में भी हिन्दी में अनेक जैनाचार्यों ने रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की है। इनमें स्थानकवासी जैन संत शुक्लचन्द्रजी म. की **शुक्लजैनरामायण** तथा आचार्य तुलसी की **अग्निपरीक्षा** अति प्रसिद्ध है।

जैनों में रामकथा की दो प्रमुख धाराएँ–

वैसे तो आवान्तर कथानकों की अपेक्षा जैन परम्परा में भी रामकथा के विविध रूप मिलते है। जैन परम्परा में लेखकों ने प्रायः अपनी अपनी दृष्टि से रामकथानक को प्रस्तुत किया है। फिर भी जैनों में रामकथा की दो धाराएं लगभग प्रायः ईसा की 9वीं शताब्दि से देखी जाती है– 1. विमलसूरि की रामकथा धारा और 2. गुणभद्र की रामकथा धारा। सम्प्रदायों की अपेक्षा-अचेल, यापनीय एवं श्वेताम्बर विमलसूरि की रामकथा की धारा का अनुसरण करते रहे, जबकि दिगम्बर धारा में भी मात्र कुछ आचार्यों ने ही गुणभद्र की धारा का अनुसरण किया। श्वेताम्बर परम्परा में संघदासगणि एवं यापनियों में रविशेण, स्वयंभू एवं हरिषेण भी मुख्यतः विमलसूरि के **पउमचरियं** का ही अनुसरण करते है, फिर भी संघदासगणि के कथानकों में कहीं कहीं, विमलसूरि से मतभेद भी देखा जाता है। रामकथा सम्बन्धी प्राकृत ग्रन्थों में शीलांक चउपन्नमहापुरिसचरियं में, हरिभद्र धूर्ताव्याख्यान में और भद्रेश्वर कहावली में, संस्कृत भाषा में रविषेण पद्मपुराण में दिगम्बर अमितगति धर्मपरीक्षा में, हेमचन्द्र योगशास्त्र की स्वोपज्ञवृत्ति में तथा त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में, धनेश्वर शत्रुज्जयमहात्म्य में, देवविजयगणि **रामचरित** (अप्रकाशित) और मेधविजयगणि लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (अप्रकाशित) में प्रायः

विमलसूरि का अनुसरण करते है। अपभ्रंश में स्वयंभू **पउमचरिय** में भी विमलसूरि का ही अनुसरण करते है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि रविषेण का **पद्मपुराण** (संस्कृत) और स्वयंभू का पउमचरिओ (अपभ्रंश) चाहे भाषा की अपेक्षा भिन्नता रखते हो, किन्तु ये दोनों ही विमलसूरि के पउमचरियं का संस्कृत या अपभ्रंश रूपान्तर ही लगते है।

गुणभद्र के उत्तरपुराण की रामकथा का अनुसरण प्रायः अल्प ही हुआ है। मात्र कृष्ण के संस्कृत के पुण्यचन्द्रोदयपुराण में तथा अपभ्रंश के पुष्पदंत के महापुराण में इसका अनुसरण देखा जाता है।

विमलसूरि की रामकथा का वैशिष्ट्य—

विमलसूरि ने अपनी रामकथा में कुछ स्थितियों में वाल्मिकी का अनुसरण किया हो, किन्तु वास्तविकता यह है कि उन्होंने जैन परम्परा में पूर्व से प्रचलित रामकथा धारा के साथ समन्वय करते हुए हिन्दू धारा की रामकथा के युक्ति-युक्त करण का प्रयास अधिक किया है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि विमलसूरि के समक्ष वाल्मीकि रामायण के साथ-साथ समवायांग का वह मूलपाठ भी रहा होगा जिसमें लक्ष्मण (नारायण) की माता को केकई बताया गया गया था। लेखक के सामने मूल प्रश्न यह था कि आगम की प्रामाणिकता को सुरक्षित रखते हुए, वाल्मीकि के साथ किस प्रकार समन्वय किया जाये। यहाँ उसने एक अनोखी सूझ से काम लिया, वह लिखता है कि लक्ष्मण की माता का पितृगृह का नाम तो कैकेयी था, किन्तु विवाह के पश्चात् दशरथ ने उसका नाम परिवर्तन कर उसे सुमित्रा नाम दिया। पउमचरियं में भरत की माताओं को भी **केकई** कहा गया है। वाल्मीकि रामायण से भिन्न इस ग्रन्थ की रचना का मुख्य उद्देश्य काव्यानन्द की अनुभूति न होकर, कथा के माध्यम से धर्मोपदेश देना है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रेणिकचिंता नामक दूसरे उपदेशक में इसका उद्देश्य रामकथा में आई असंगतियों तथा कपोल-कल्पनाओं का निराकरण बताया गया है। यह बात सुस्पष्ट

है कि यह रामकथा का उपदेशात्मक जैन संस्करण है और इसलिये इसमें यथासम्भव हिंसा, घृणा, व्यभिचार आदि दुष्प्रवृत्तियों को न उभारकर सद्प्रवृत्तियों को ही उभारा गया है। इसमें वर्ण-व्यवस्था पर भी बल नहीं दिया गया है। यहाँ शम्बूक-वध का कारण शूद्र की तपस्या करना नहीं है। चन्द्रहास खड्ग की सिद्धि के लिये बांसो के झुरमुट में साधनारत शम्बूक का लक्ष्मण के द्वारा अनजान में ही मारा जाना है। लक्ष्मण उस पूजित खड्ग को उठाते हैं और परीक्षा हेतु बांसों के झुरमुट पर चला देते हैं, जिससे शम्बूक मारा जाता है। इस प्रकार जहाँ वाल्मीकि रामायण में शम्बूक वध की कथा वर्ण-विद्वेष का खुला उदाहरण है, वहाँ पउमचरियं का शम्बूक वध अनजान में हुई एक घटना मात्र है। पुनः कवि ने राम के चरित्र को उदात्त बनाये रखने हेतु शम्बूक और रावण का-वध राम के द्वारा न करवाकर लक्ष्मण के द्वारा करवाया है। बालि के प्रकरण को भी दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया गया है। बालि सुग्रीव को राज्य देकर संन्यास ले लेते हैं। दूसरा कोई विद्याधर सुग्रीव का रूप बनाकर उसके राज्य एवं अन्तःपुर पर कब्जा कर लेता है। सुग्रीव राम की सहायता की अपेक्षा करता है और राम उसकी सहायता कर उस नकली सुग्रीव का वध करते है। यहाँ भी सुग्रीव के कथानक में से भ्रातृ-पत्नी से विवाह की घटना को हटाकर उसके चरित्र को उदात्त बनाया गया है। इसी प्रकार कैकेयी भरत हेतु राज्य की मांग राम के प्रति विद्वेष के कारण नहीं, अपितु भरत को वैराग्य लेने से रोकने के लिए करती है। राम भी पिता की आज्ञा से नहीं अपितु स्वेच्छा से ही वन को चल देते हैं ताकि वे भरत को राज्य पाने में बाधक नहीं रहे। इसी प्रकार विमलसूरि के पउमचरियं में कैकेयी के व्यक्तित्व को भी ऊँचा उठाया गया है, वह न तो राम के वनवास की मांग करती है और न उनके स्थान पर भरत के राज्यारोहण की। वह अन्त में सन्यास ग्रहण कर मोक्षगामी बनती है न केवल यही, अपितु सीताहरण के प्रकरण में भी मृगचर्म हेतु स्वर्णमृग मारने के सीता के आग्रह की घटना को भी स्थान न देकर राम एवं सीता के चरित्र को

निर्दोष और अहिंसामय बनाया गया है। रावण के चरित्र को उदात्त बनाने हेतु यह बताया गया है कि उसने किसी मुनि के समक्ष यह प्रतिज्ञा ले रखी थी कि मैं किसी परस्त्री का, उसकी स्वीकृति के बिना शील भंग नहीं करूँगा। इसलिये वह सीता को समझाकर सहमत करने का प्रयत्न करता रहता है, बलप्रयोग नहीं करता है। पउमचरियं मांस-भक्षण के दोष दिखाकर सामिष भोजन से जन-मानस को विरत करना भी जैनधर्म की अहिंसा की मान्यता के प्रसार का ही एक प्रयत्न है। ग्रन्थ में वानरों एवं राक्षसों को विद्याधरवंश के मानव बताया गया है, साथ ही यह भी सिद्ध किया गया है कि वे कला-कौशल और तकनीक में साधारण मनुष्यों से बहुत बढ़े-चढ़े थे। वे पाद विहारी न होकर विमानों में विचरण करते थे। इस प्रकार इस ग्रंन्थ में विमलसूरि ने अपने युग में प्रचलित रामकथा को अधिक युक्तिसंगत और धार्मिक बनाने का प्रयास किया है।

विमलसूरि की रामकथा से अन्य जैनचार्यों का वैभिन्य एवं समरूपता-

विमलसूरि के पउमचरियं के पश्चात् जैन रामकथा का एकरूप संघदास गणी (छठी शताब्दी) की वसुदेवहिंडी में मिलता है। वसुदेवहिंडी की रामकथा कुछ कथा-प्रसंगों के संदर्भ में पउमचरियं की रामकथा के भिन्न है और वाल्मीकि रामायण के निकट है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सीता को रावण और मन्दोदरी की पुत्री बताया गया है, जिसे एक पेटी में बन्दकर जनक के उद्यान में गड़वा दिया गया था, जहाँ से हल चलाते समय जनक को उसकी प्राप्ति हुई थी। इस प्रकार यहाँ सीता की कथा को तर्कसंगत बनाते हुए भी उसका साम्य भूमि से उत्पन्न होने की धारणा के साथ जोड़ा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संघदासगणी ने रामकथा को कुछ भिन्न रूप से प्रस्तुत किया है। जबकि अधिकांश श्वेताम्बर लेखकों ने विमलसूरि का ही अनुसरण किया है। मात्र यही नहीं यापनीय परम्परा में पद्मपुराण के रचयिता रविसेन (7वीं शताब्दी) और

अपभ्रंश पउमचरियं के रचयिता यापनीयस्वयम्भू (7वीं शती) ने भी विमलसूरि का ही पूरी तरह अनुकरण किया है। पद्मपुराण तो पउमचरियं का ही विकसित संस्कृत रूपान्तरण मात्र है। यद्यपि उन्होंने उसे अचेल परम्परा के अनुरूप ढालने का प्रयास किया है।

आठवीं शताब्दी में हरिभद्र ने अपने धूर्ताख्यान में और नवीं शताब्दी में शीलांकाचार्य ने अपने ग्रन्थ **चउपन्नमहापुरिसचरियं** में अति संक्षेप में रामकथा को प्रस्तुत किया है। भद्रेश्वर (11वीं शताब्दी) की कहावली में भी रामकथा का संक्षिप्त विवरण उपलब्ध हैं। तीनों ही ग्रन्थकार कथा विवेचन में विमलसूरी की परम्परा का विवरण उपलब्ध हैं। तीनों की ग्रन्थकार कथा विवेचन में विमलसूरी की परम्परा का पालन करते हैं। इन तीनों के द्वारा प्रस्तुत रामकथा विमलसूरि से किस अर्थ में भिन्न है यह बता पाना इनके संक्षिप्त रूप के कारण कठिन है। यद्यपि भद्रेश्वरीसूरि ने सीता के द्वारा सपत्नियों के आग्रह पर रावण के पैर और चित्र बनाने के उल्लेख किया। ये तीनों ही रचनाएँ प्राकृत भाषा में है। 12वीं शताब्दी में हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ योगशास्त्र की स्वोपज्ञवृत्ति में तथा त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में संस्कृत भाषा में रामकथा को प्रस्तुत किया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में वर्णित रामकथा का स्वतन्त्र रूप से भी प्रकाशन हो चुका है। हेमचन्द्र सामान्यतया तो विमलसूरि की रामकथा का ही अनुसरण करते हैं, किन्तु उन्होंने सीता का वनवास का कारण, सीता के द्वारा रावण का चित्र बनाना बताया है। यद्यपि उन्होंने इस प्रसंग के शेष सारे कथानक में पउमचरियं का ही अनुसरण करते हैं, किन्तु उन्होंने सीता का वनवास का कारण, सीता के द्वारा रावण का चित्र बनाना बताया है। यद्यपि उन्होंने इस प्रसंग के शेष सारे कथानक में पउमचरियं का ही अनुसरण किया है, फिर भी सौतियाडाह के कारण राम की अन्य पत्नियों ने सीता से रावण का चित्र बनवाकर, उसके सम्बन्ध में लोकापवाद प्रसारित किया, ऐसा मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत

कर दिया है। इस प्रसंग में धोबी के लोकायवाद को छोड़ देते है। चौदहवीं शताब्दी में धनेश्वर ने शत्रुंजयमहात्म्य में भी रामकथा का विवरण दिया है। सोलहवीं शताब्दी में देवविजयगणी ने रामचरित पर संस्कृत में एक स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा है। इसी प्रकार मेघविजय (17वीं शताब्दी) ने लघुत्रिषष्टि में भी रामकथा का संक्षिप्त विवरण दिया है। यद्यपि इन ग्रन्थों की अनुपलब्धता के कारण इनका विमलसूरि से कितना साम्य और वैषम्य है, यह बता पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

पउमचरियं की भाषा एवं छंद योजना–

सामान्यतया **पउमचरियं** प्राकृत भाषा में रचित काव्य ग्रन्थ है, फिर भी इसकी प्राकृत मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, पैशाची और महाराष्ट्री प्राकृतों में कौन सी प्राकृत है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। यह तो स्पष्ट है कि इसका वर्तमान संस्करण मागधी, अर्धमागधी और शौरसेनी प्राकृतों की अपेक्षा महाराष्ट्री प्राकृत से अधिक नैकट्य रखता है, फिर भी इसे परवर्ती महाराष्ट्री प्राकृत से अलग रखना होगा। इस सम्बन्ध में प्रो. व्ही. एम. कुलकर्णी ने पउमचरियं की अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना में अतिविस्तार से एवं प्रमाणो सहित चर्चा की है। उसका सार मात्र इतना ही है कि पउमचरियं की भाषा परवर्ती महाराष्ट्री प्राकृत न होकर प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है; वह सामान्य महाराष्ट्री प्राकृत का अनुसरण न करके जैन महाराष्ट्री प्राकृत का अनुसरण करती है, अतः उसका नैकट्य आगमिक अर्धमागधी से भी देखा जाता है। वे लिखते हैं कि *"Paumachariya, which represents an archaic form of jain maharastri"* पउमचरियं की भाषा की प्राचीनता इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि उसमें प्रायः गाथा (आर्या) छंद की प्रमुखता है, जो एक प्राचीन और सरलतम छंद योजना है। गाथा या आर्या छंद की प्रमुखता होते हुए भी पउमचरियं में स्कन्धक, इन्द्रव्रज्जा, उपेन्द्रव्रज्जा, उपजाति आदि अनेक छन्दों के प्रयोग भी मिलते हैं, फिर भी ये गाथा/ आर्या छंद

की अपेक्षा अति अल्प मात्रा में प्रयुक्त हुए है। मेरी दृष्टि में इसकी भाषा और छन्द योजना का नैकट्य आगमिक व्याख्या साहित्य में निर्युक्ति साहित्य से अधिक है। इसकी भाषा और छन्द योजना से यह सिद्ध होता है कि इसका रचनाकाल दूसरी-तीसरी शती से परवर्ती नहीं है।

पउमचरियं का रचनाकाल–

पउमचरियं में विमलसूरि ने इसके रचनाकाल का भी स्पष्ट निर्देश किया है–

पंचेव य वास सया दुसमाए तीस वरिस संजुत्ता।
वीर सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं।।

अर्थात् दुसमा नामक आरे के पाँच सौ तीन वर्ष और वीर का निर्वाण होने पर यह चरित्र लिखा गया। यदि हम लेखक इस कथन को प्रामाणिक माने तो इस ग्रन्थ की रचना विक्रम संवत् 60 के लगभग मानना होगी। महावीर का निर्वाण दुसमा नामक आरे के प्रारम्भ होने लगभग 3 वर्ष और 9 माह हो चुका था अतः इसमें चार वर्ष और जोड़ने होगे। मतान्तर से महावीर का निर्वाण विक्रम संवत् के 410 वर्ष पूर्व भी माना जाता है, इस सम्बन्ध में मैंने अपने लेख *"Date of Mahavira's Nirwana"* में विस्तार से चर्चा की है। अतः उस दृष्टि से पउमचरियं की रचना विक्रम संवत् 124 अर्थात् विक्रम संवत् की दूसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में हुई होगी। मेरी दृष्टि में पउमचरियं का यही रचना काल युक्ति-संगत सिद्ध होता है। क्योंकि ऐसा मानने पर लेखक के स्वयं के कथन से संगति होने के साथ-साथ उसे परवर्ती काल का मानने के सम्बन्ध में जो तर्क दिये गये है वे भी निरस्त हो जाते है। हरमन जेकोबी, स्वयं इसकी पूर्व तिथि 2 री या 3 री शती मानते है, उनके मत से यह मत अधिक दूर भी नहीं है। दूसरे विक्रम की द्वितीय शताब्दी पूर्व ही शकों का आगमन हो चुका था अतः इसमें प्रयुक्त लग्नों के ग्रीक नाम तथा दीनार, यवन, शक आदि शब्दों की उपलब्धि में भी

कोई बाधा नहीं रहती है। यवन शब्द ग्रीकों अर्थात् सिकन्दर आदि का सूचक है जो ईसा पूर्व भारत में आ चुके थे। शकों का आगमन भी विक्रम संवत् के पूर्व हो चुका था। कालकाचार्य द्वारा शकों के भारत लाने का उल्लेख विक्रम पूर्व का है। दीनार शब्द भी शकों के आगमन के साथ ही आ गया होगा। साथ ही नाईल कुल या शारवा भी इस काल में अस्तित्व में आ चुकी थी। इसे मैंने पउमचरियं की परम्परा में सिद्ध किया है। अतः पउमचरियं को विक्रम की द्वितीय शती के पूर्वार्ध में रचित मानने में कोई बाधा नहीं रहती है।

विमलसूरि और उनके पउमचरिय का सम्प्रदाय—

यहाँ क्या विमलसूरि का पउमचरियं यापनीय है?

इस प्रश्न का उत्तर भी अपेक्षित है। विमलसूरि और उनके ग्रन्थ पउमचरियं के सम्प्रदाय सम्बन्धी प्रश्न को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। जहाँ श्वेताम्बर[1] और विदेशी विद्वान[2] पउमचरियं में उपलब्ध अन्तः साक्ष्यों के आधार पर उसे श्वेताम्बर परम्परा का बताते है, वहीं पउमचरियं के श्वेताम्बर परम्परा के विरोध में जानेवाले कुछ तथ्यों को उभार कर कुछ दिगम्बर विद्वान् उसे दिगम्बर या यापनीय सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।[3] वास्तविकता यह है कि विमलसूरि के पउमचरियं में सम्प्रदायगत मान्यताओं की दृष्टि से यद्यपि कुछ तथ्य दिगम्बर परम्परा के पक्ष में जाते हैं, किन्तु अधिकांश तथ्य श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में ही जाते हैं। जहाँ हमें सर्वप्रथम इन तथ्यों की समीक्षा कर लेनी होगी। प्रो. बी. एम. कुलकर्णी ने जिन तथ्यों का संकेत प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी से प्रकाशित **पउमचरियं** की भूमिका में किया है, उन्हीं के आधार पर यहाँ हम यह चर्चा प्रस्तुत करने जा रहे हैं।[4]

---

1. पउमचरियं भाग-1, इण्ट्रोडक्सन पेज 18, फुटनोट नं. 2।
2. वहीं,
3. देखें, पद्मपुराण (रविषेण), भूमिका, डॉ. पन्नालाल जैन, पृ. 22-23।

पउमचरिय की दिगम्बर परम्परा के निकटता सम्बन्धी कुछ तर्क और उनके उत्तर–

(1) कुछ दिगम्बर विद्वानों का कथन है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में सामान्यतया किसी ग्रन्थ का प्रारम्भ–**जम्बू स्वामी के पूछने पर सुधर्मा स्वामी ने कहा,** – इस प्रकार से होता है, आगमों के साथ-साथ कथा ग्रन्थों में यह पद्धति मिलती है, इसका उदाहरण संघदासगणि की वसुदेव हिण्डी है। किन्तु वसुदेवहिण्डी में जम्बू ने प्रभव को कहा--ऐसा भी उल्लेख हैं।[5] जबकि दिगम्बर परम्परा के कथा ग्रन्थों में सामान्यतया श्रेणिक के पूछने पर गौतम गणधर ने कहा– ऐसी पद्धति उपलब्ध होती है। जहाँ तक पउमचरियं का प्रश्न है उसमें निश्चित ही श्रेणिक के पूछने पर गौतम ने रामकथा कही ऐसी ही पद्धति उपलब्ध होती है।[6] किन्तु मेरी दृष्टि में इस तथ्य को पउमचरियं के दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने का आधार नहीं माना जा सकता, क्योंकि पउमचरियं में स्त्री मुक्ति आदि ऐसे अनेक ठोस तथ्य हैं, जो श्वेताम्बर परम्परा के पक्ष में ही जाते हैं। यह संभव है कि संघभेद के पूर्व उत्तर भारत की निर्ग्रन्थ परम्परा में दोनों ही प्रकार की पद्धतियाँ समान रूप से प्रचलित रही हो और बाद में एक पद्धति का अनुसरण श्वेताम्बर आचार्यों ने किया हो और दूसरी का दिगम्बर या यावनीय आचार्यों ने किया हो। यह तथ्य विमलसूरी की परम्परा के निर्धारण में बहुत अधिक सहायक इसीलिए भी नहीं होता है, कि प्राचीन काल में, श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में ग्रन्थ प्रारम्भ करने की अनेक शैलियाँ प्रचलित रही हैं। दिगम्बर परम्परा में विशेष रूप से यापनीयों में जम्बू और प्रभव से भी कथा परम्परा के चलने का उल्लेख तो स्वयं पद्चरित में ही मिलता

---

4. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन (बी. एम. कुलकर्णी), पेज 18-22।
5. ति तस्सेव पभवो कहेयब्वो, तप्पभवस्य य पभवस्य त्ति। वसुदेवहिण्डी (संघदासगणि), गुजरात साहित्य अकादमी, गाँधीनगर पृ. 2।
6. तह इन्दभूइकहियं, सेणियरण्णस्स नीसेसं।- पउमचरियं 1,33।

है। वहीं क्रम श्वेताम्बर ग्रन्थ वसुदेवहिण्डी में भी है।[7] श्वेताम्बर परम्परा में भी कुछ ऐसे भी आगम ग्रन्थ हैं, जिनमें किसी श्राविका के पूछने पर श्रावक ने कहा– इससे ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है। '**देविन्दत्थव**' नामक प्रकीर्णक में श्रावक-श्राविका के संवाद के रूप में ही उस ग्रन्थ का समस्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।[8] आचारांग में शिष्य की जिज्ञासा समाधान हेतु गुरू के कथन से ही ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है।[9] उसमें जम्बू और सुधर्मा से संवाद का कोई संकेत भी नहीं है। इससे यही फलित होता है कि प्राचीनकाल में ग्रन्थ का प्रारम्भ करने की कोई एक निश्चित पद्धति नहीं थी। श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आचांराग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवयांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी अनुयोगद्वार, दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प आदि अनेक ग्रन्थों में भी जम्बू और सुधर्मा के संवाद वाली पद्धति नहीं पायी जाती है। पद्धतियों की एक रूपता और विशेष सम्प्रदाय द्वारा विशेष पद्धतिं का अनुसरण यह एक परवर्ती घटना है। जबकि पउमचरियं अपेक्षाकृत एक प्राचीन रचना है।

(2) दिगम्बर विद्वानों ने पउमचरियं में महावीर के विवाह के अनुल्लेख (पउमचरियं 2/28-29 एवं 3/57-58) के आधार पर उसे अपनी परम्परा के निकट बताने का प्रयास किया है। किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्रथम तो पउमचरियं में महावीर का जीवन-प्रसंग अति संक्षिप्त रूप से वर्णित है अतः महावीर के विवाह का उल्लेख न होने से उसे दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं माना जा सकता है। स्वयं

---

7. वर्द्ध मानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरं।
इन्द्रभूति परिप्राप्तः सुधर्म धारिणीभवम्।।
प्रभवं कमतः कीर्ति तत्तोनुत्तरवाग्मिनं।
लिखितं तस्य संप्राप्य सवेयेत्लोयमुद्गतः।।
– पद्मचरित 1/41-42 पर्व 123/166

8. देविंदत्थओ (दवेन्द्रस्तव, सम्पादक–प्रो. सागरमल जैन, आगम-अहिंसा-समता-प्राकृत संस्थान उदयपुर) गाथा क्रमांक–3,7,11,13,14।

9. सुयं में आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं। - आचारांग (सं. मधुकर मुनि), 1/1/1/1.

श्वेताम्बर परम्परा के कई प्राचीनग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें महावीर के विवाह का उल्लेख नहीं है। पं. दलसुखभाई मालवणिया ने स्थानांग एवं समवायांग के टिप्पणी में लिखा है[10] कि भगवतीसूत्र के विवरण में महावीर के विवाह का उल्लेख नहीं मिलता है। विवाह का अनुल्लेख एक अभावात्मक प्रमाण है, जो अकेला निर्णायक नहीं माना जा सकता, जब तक कि अन्य प्रमाणों से यह सिद्ध नहीं हो जावे कि पउमचरियं दिगम्बर या यापनीय ग्रन्थ है।

(3) पुनः पउमचरियं में महावीर के गर्भ-परिवर्तन का उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु मेरी दृष्टि में इसका कारण भी उसमें महावीर की कथा को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करना है। पुनः यहाँ भी किसी अभावात्मक तथ्य के आधार पर ही कोई निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न होगा, जो कि तार्किक दृष्टि से समुचित नहीं है।

(4) पउमचरियं में पाँच स्थावरकायों[11] के उल्लेख के आधार पर भी उसे दिगम्बर परम्परा के निकट बताने का प्रयास किया गया है, किन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि स्थावरों की संख्या तीन मानी गई है अथवा पाँच, इस आधार पर ग्रन्थ के श्वेताम्बर या दिगम्बर परम्परा का होने का निर्णय करना संभव नहीं है। क्योंकि दिगम्बर परम्परा में जहाँ कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय (111) में तीन स्थावरों की चर्चा की हैं, वहीं अन्य आचार्यों ने पाँच की चर्चा की है। इसी प्रकार श्वेताम्बर परम्परा के उत्तराध्ययन आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी तीन स्थावरों की तथा पाँच स्थावरों की दोनों मान्यताएँ उपलब्ध होती है। अतः ये तथ्य विमलसूरी और उनके ग्रन्थ की परम्परा के निर्णय का आधार नहीं बन सकते। इस तथ्य की विशेष चर्चा हमने तत्त्वार्थसूत्र की परम्परा के प्रसंग में की है, साथ ही एक स्वतन्त्र लेख भी श्रमण अप्रैल-जून 93 में प्रकाशित किया है, पाठक इसे वहाँ देखें।

---

10. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन, पृष्ठ 19 का फुटनोट क्र. 1।
11. पउमचरियं, 2/65 एवं 2/93।

(5) कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि पउमचरियं में 14 कुलकरों की अवधारणा पायी जाती हैं।[12] दिगम्बर परम्परा द्वारा मान्य ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ती में भी 14 कुलकरों की अवधारणा का समर्थन देखा जाता है[13] अतः यह ग्रन्थ दिगम्बर परम्परा का होना चाहिए। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में अन्तिम कुलकर के रूप में ऋषभ का उल्लेख है। ऋषभ के पूर्व नाभिराय तक 14 कुलकरों की अवधारणा तो दोनों परम्पराओं में समान है। अतः यह अन्तर ग्रन्थ के सम्प्रदाय के निर्धारण में महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता है। पुनः जो कुलकरों के नाम पउमचरियं में दिये गये है उनका जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति और तिलोयपण्णत्ति दोनों से ही कुछ अन्तर है।

(6) पउमचरियं के 14वें अधिकार की गाथा 115 में समाधिमरण को चार शिक्षाव्रतों के अन्तर्गत परिगणित किया गया है,[14] किन्तु श्वेताम्बर आगम उपासकदशा में समाधिमरण का उल्लेख शिक्षाव्रतों के रूप में नहीं हुआ है जबकि दिगम्बर परम्परा के कुन्दकुन्द-आदि कुछ आचार्य समाधिमरण को 12वें शिक्षाव्रत के रूप में अंगीकृत करते हैं।[15] अतः पउमचरियं दिगम्बर परम्परा से सम्बन्ध होना चाहिए। इस संदर्भ में मेरी मान्यता यह है कि गुणव्रतों एवं शिक्षाव्रतों में एकरूपता का अभाव पाया जाता है।[16] दिगम्बर परम्परा में तत्त्वार्थ का अनुसरण करने वाले

---

12. पउमचरियं, 3/55-56
13. तिलोयपण्णत्ति, महाधिकार गाथा-421 (जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर)।
14. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार 2।
15. पंच य अणुब्वयाई तिण्णेव गुणव्वयाई भणियाई।
सिक्खावयाणि एत्तो वत्तारि जिणोवइट्ठणि।।
धूलयरं पाणिवहं मूसावायं अदत्तदाणं च।
परजुवईण निवित्ती संतोसदयं च पंचमयं।।
दिसिविदिसाण य नियमो अणात्थदंडस्स वज्जणं चेव।
उपभोगपरीम्पणं तिण्णेय गुणव्वया एए।।
सामाइयं च उदवास-पोसहो अतिहिसंविभागो य।
अंते समाहिमरणं सिक्खासुदयाइ चत्तारि।।

– पउमचरियं 14/112-115

दिगम्बर आचार्य भी समाधिमरण को शिक्षाव्रतों में परिग्रहित नहीं करते हैं। जबकि कुन्दकुन्द ने उसे शिक्षाव्रतों में परिग्रहित किया है। जब दिगम्बर परम्परा ही इस प्रश्न पर एकमत नहीं है तो फिर इस आधार पर पउमचरियं की परम्परा का निर्धारण कैसे किया जा सकता है? साम्प्रदायिक मान्यताओं के स्थिरीकरण के पूर्व निर्ग्रन्थ परम्परा में विभिन्न धारणाओं की उपस्थिति एक सामान्य बात थी। अतः इस ग्रन्थ के सम्प्रदाय का निर्धारण करने में व्रतों के नाम एवं क्रम सम्बन्धी मतभेद सहायक नहीं हो सकते।

(7) पउमचरियं में अनुदिक् का उल्लेख हुआ है।[17] श्वेताम्बर आगमों में अनुदिक् का उल्लेख नहीं है, जबकि दिगम्बर ग्रन्थ (यापनीय ग्रन्थ) षट्खण्डागम एवं तिलोयपण्णत्ती में इसका उल्लेख पाया जाता है[18] किन्तु मेरी दृष्टि में प्रथम तो यह भी पउमचरियं के सम्प्रदाय निर्णय के लिए महत्त्वपूर्ण साक्ष्य नहीं माना जा सकता है, क्योंकि अनुदिक् की अवधारणा से श्वेताम्बरों का भी कोई विरोध नहीं है। दूसरे जब अनुदिक् शब्द स्वयं आचारांग में उपलब्ध है[19] तो फिर हमारे दिगम्बर विद्वान् यह कैसे कह देते हैं कि श्वेताम्बर परम्परा में अनुदिक की अवधारणा नहीं है?

---

16. पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं।।
थूले तसकायवहे थूले मोसे अदत्तथूले य।
परिहारो प...महिला परिग्गहारंभ परिमाणं।।
दिसविदिसगाणपढमं अणत्थदण्डस्य वज्जणं विदियं।
भोगोपभोगपरिमाण इयमेव गुणव्वया तिण्णि।।
सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तीइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते।। – चारित्तपाहुड 22-26
ज्ञातव्य है कि जटासिंह नन्दी ने भी वराङगचरित सर्ग 22 में विमलसूरि का अनुसरण किया है।
17. देखिए जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन (लेखक- डॉ. सागरमल जैन) भाग-2 पृ. सं. 274
18. पउमचरियं, 102/145
19. पउमचरियं, इण्ट्रोडक्सन, पृष्ठ 19, पद्मपुराण, भूमिका (पं. पन्नालाल), पृ. 30। परजुवईण निवित्ती संतोसदयं च पंचमयं।।

(8) पउमचरियं में दीक्षा के अवसर पर ऋषभ द्वारा वस्त्रों के त्याग का उल्लेख मिलता है।[20] इसी प्रकार भरत द्वारा भी दीक्षा ग्रहण करते समय वस्त्रों के त्याग का उल्लेख है।[21] किन्तु यह दोनों सन्दर्भ भी पउमचरियं के दिगम्बर या यापनीय होने के प्रमाण नहीं कहे जा सकते क्योंकि श्वेताम्बर मान्य ग्रन्थों में भी दीक्षा के अवसर पर वस्त्राभूषण त्याग का उल्लेख तो मिलता ही है।[22] यह भिन्न बात है कि श्वेताम्बर ग्रन्थों में उस वस्त्र त्याग के बाद कहीं देवदुष्य का ग्रहण भी दिखाया जाता है।[23] ऋषभ, भरत, महावीर आदि अचेलकता तो स्वयं श्वेताम्बरों को भी मान्य है। अतः पं. परमानन्द शास्त्री का यह तर्क ग्रन्थ के दिगम्बरत्व का प्रमाण नहीं माना जा सकता है।[24]

(9) पं. परमानन्द शास्त्री के अनुसार पउमचरियं में नरकों के संख्या का जो उल्लेख मिलता है वह आचार्य पूज्यपाद के सर्वार्थसिद्धिमान्य तत्त्वार्थ के पाठ के निकट है, जबकि श्वेताम्बर भाष्य-मान्य तत्त्वार्थ के मूलपाठ में यह उल्लेख नहीं है। किन्तु तत्त्वार्थ भाष्य एवं अन्य श्वेताम्बर आगमों में इस प्रकार के उल्लेख उपलब्ध होने से इसे भी निर्णायक तथ्य नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार नदियों के विवरण का तथा भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के विभाग आदि तथ्यों को भी ग्रन्थ के दिगम्बरत्व के प्रमाण हेतु प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु ये सभी तथ्य श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी उल्लेखित है।[25] अतः ये तथ्य

---

20. जो इमाओ (दिसाओ) अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ अणुदिसाओं, सोऽहं। आचारांग 1/1/1/1, शीलांकटीका, पृ. 19। (ज्ञातव्य है कि मूल पउमचरियं में केवल अनुदिसाइं, शब्द है जो कि आचारांग में उसी रूप में है। उससे नौ अनुदिशाओं की कल्पना दिखाकर उसे श्वेताम्बर आगमों में अनुपस्थिति कहना उचित नहीं है।)
21. देखिए, पउमचरियं 3/135-36।
22. पउमचरियं, 83/5
23. मुक्कं वासोजुयलं.....।–चउपन्नमहापुरिसचरियं, पृ. 273।
24. एगं देवदूसमादाय.....पव्वइए।–कल्पसूत्र 114
25. पउमचरियं भाग-1 (इण्ट्रोडक्सन पेज 19, फुटनोट 5)

ग्रन्थ के दिगम्बरत्व या श्वेताम्बरत्व के निर्णायक नहीं कहे जा सकते। मूल परम्परा के एक होने से अनेक बातों में एकरूपता का होना तो स्वाभाविक ही है। पुनः षट्खण्डागम, तिलोयपण्णति, तत्त्वार्थसूत्र की सर्वार्थसिद्धि आदि दिगम्बर टीकाएँ पउमचरियं से परवर्ती है अतः उनमें विमलसूरि के पउमचरियं का अनुसरण देखा जाना आश्चर्यजनक नहीं है किन्तु इनके आधार पर पउमचरियं की परम्परा को निश्चित नहीं किया जा सकता है। पूर्ववर्ती ग्रन्थ के आधार पर परवर्ती ग्रन्थ की परम्परा का निर्धारण तो सम्भव है किन्तु परवर्ती ग्रन्थों के आधार पर पूर्ववर्ती ग्रन्थ की परम्परा को निश्चित नहीं किया जा सकता। पुनः पउमचरियं में तीर्थंकर माता के 14 स्वप्न, तीर्थंकर नामकर्मबन्ध के बीस कारण, चक्रवर्ती की रानियों की 64,000 संख्या, महावीर के द्वारा मेरूकम्पन, स्त्रीमुक्ति का स्पष्ट उल्लेख आदि अनेक ऐसे तथ्य है जो स्त्री मुक्ति निषेधक दिगम्बर परम्परा के विपक्ष में जाते हैं। विमलसूरि के सम्पूर्ण ग्रन्थ में दिगम्बर शब्द का अनुल्लेख और सियम्बर शब्द का एकाधिक बार उल्लेख होने से उसे किसी भी स्थिति में दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

क्रमशः

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

रससिक्त वचन सुनकर हँसते हुए राजकुमार ने हाथ हटा लिया। कुलयुवती शैय्या पर बैठ गयी। वहीं उसके पार्श्व में बैठकर राजपुत्र बोला—

तुम मेरे हृदय की स्वामिनी हो, मेरा जीवन हो। स्पष्ट बताओ तुमने क्या विचार किया?

बड़े पशोपेश में पड़ गयी हूँ मैं तो। मन और विवेक में संघर्ष छिड़ा हुआ है। कुछ विचार नहीं कर सकी।

क्या कहता है तुम्हारा मन?

मन तो कहता है, संसार-सुख भोग।

और विवेक?

विवेक कहता है कि अखण्ड शील का पालन करना चाहिए।

फिर विवेक विजयी हुआ या मन?

कोई भी न हो सका। दोनों में संघर्ष हो रहा है। आप ही कुछ सहायता करिए। आप तो नीति निपुण हैं।

नीति-निपुण शब्द सुनते ही राजपुत्र तोसल का विवेक जाग्रत हो गया। वह बोला—

देखो सुन्दरी! यदि तुम शील पालन करना चाहती हो तो मैं बाधक नहीं बनूँगा। मैं तो तुम्हारे संकेत से उत्साहित होकर ही यहाँ तक आया हूँ। यद्यपि कामाग्नि में जल मैं भी रहा हूँ किन्तु तुम पर बलात्कार करने का मेरा कोई विचार नहीं है। जो कुछ होगा तुम्हारी सहमति से ही होगा। तुम भली-भाँति सोच-विचारकर निर्णय करो।

युवती कहने लगी–

आप मेरी पूरी बात सुन लीजिए और फिर निर्णय लेने में मेरी सहायता कीजिए।

सुनाओ।—राजपुत्र ने शांतचित्त होकर कहा।

सुन्दरी सुनाने लगी–

इस नगरी में नंद नाम का नगरसेठ है। उसकी पत्नी रत्नरेखा के उदर से मैं उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम सुवर्णदेवी है। माता-पिता ने मेरा यथा योग्य पालन किया और विष्णुदत्त के पुत्र हरिदत्त के साथ लग्न कर दिया। मेरा पति लग्न के बाद व्यापार के निमित्त लंकापुरी की ओर चला गया। आज उसे गये बारह वर्ष हो गये अभी तक कोई खबर नहीं है।

पति के अभाव में मुझे अकेली जानकर कामदेव ने सदलबल मुझ पर आक्रमण कर दिया। मैं कामाग्नि में जलने लगी। बार-बार मेरे हृदय में एक ही विचार आता– वे स्त्रियाँ ही धन्य हैं जिनके पति उनके पास रहते हैं। इस संसार में पति बिना सब सूना है।

काम की तीव्रता इतनी बढ़ी कि मैं संतप्त हो गई। गुरुजनों की विनय, कुल की मर्यादा, लोक-लोज सब कुछ भूल गई। स्त्रियों के पवित्र श्रृंगार शील धर्म को भी विस्मृत कर दिया।

आज जिस समय आपने मुझे देखा उस समय मैं खिड़की से कूदकर आत्महत्या करने वाली थी। आपके संकेत से मुझे आशा बँधी और तभी से मेरे विवेक और कामानल में संघर्ष हो रहा है। मैं कुछ निश्चय नहीं कर पा रही हूँ कि आत्महत्या करूँ या शील खण्डित करूँ। इन दो के सिवाय तीसरा मार्ग मुझे सुझाई ही नहीं देता।

अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ।

राजपुत्र ने गम्भीर मनन करके कहा—

सुन्दरी! नीति का वचन ऐसा है कि स्त्री का पति पागल हो, असाध्य रोगी हो, अथवा 5 वर्ष से लापता हो तो वह इच्छानुसार अपने

से उच्च कुल के किसी व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर ले। तुम्हारे पति को लापता हुए बारह वर्ष हो गये हैं। इसलिए नीति के अनुसार तो तुम स्वतंत्र हो।

इसके अतिरिक्त आत्महत्या तो बहुत ही बड़ा पाप है। यदि तुम धर्म में मन लगाकर शील को अखंडित रख सको तब तो बहुत अच्छा है अन्यथा.....

यह तो हो ही नहीं सकता, मैं बहुत प्रयास करके देख चुकी हूँ।

तो फिर तुम्हारी सहमति से.....

हों, किन्तु मेरे कुल की लाज का ख्याल रखना। इतना मैं आपको वचन देती हूँ कि यदि आपको कोई दण्ड मिलेगा तो मैं भी पीछे नहीं रहूँगी। मैं स्वयं भी दण्ड भोगूँगी। और सुवर्णदेवी ने राजपुत्र को अपने आलिंगन में बाँध लिया।

राजपुत्र तोसल ने भी उसे आलिंगन में लेते हुए कहा—

यह हमारा गांधर्व विवाह है और गांधर्व विवाह नीति सम्मत होता है।

रातभर तोसल सुवर्णदेवी के पास रहा और प्रातः दिन निकलने से पहले ही कमंद के सहारे उतर कर चला गया। तोसल प्रत्येक रात्रि को आता, सुवर्णदेवी उसकी प्रतीक्षा करती, दोनों रात भर सुख भोगते और तोसल प्रातः होने से पहले ही चला जाता। यह क्रम आठ महीने तक चलता रहा।

स्त्री और पुरुष के मिलन का जो परिणाम होना चाहिए था वहीं हुआ। सुवर्णदेवी गर्भवती हो गई। उसका गर्भ माता से छिपा न रह सका। माता-पिता ने बहुत पूछा, डांटा फटकारा, धमकाया भी किन्तु सुवर्णदेवी ने अपनी जबान न खोली। वह पत्थर की मूर्ति बन गई।

कुल मर्यादा का प्रश्न था। नगरसेठ को लोक-लाज का ख्याल भी रखना था। गर्भ की बात एक न एक दिन प्रकट हो ही जानी थी। उस समय कितना अपयश होगा—वह सोचकर ही नगरसेठ नन्द काँप-काँप जाता। उसने राजा से पुकार की—

महाराज! मेरी पुत्री का पति परदेश गया हुआ है किन्तु कोई पुरुष उसके साथ समागम करता है। आप इसका पता लगवाइये।

राजा कोशल ने नगरसेठ को तो आश्वासन देकर विदा किया और मंत्री को अपराधी का पता लगाने की आज्ञा दी। मंत्री ने खोज की तो राजकुमार तोसल को अपराधी पाया। मंत्री ने राजा से कह दिया। सुनते ही उग्र स्वभावी कोशल आगबबूला हो गया। उसने आदेश दिया—

राजकुमार तोसल को फाँसी पर लटका दिया जाय।

राजा की आज्ञा मंत्री को पालन करनी ही पड़ी। वह तोसल को साथ लेकर शमशान की ओर चल दिया। शमशान पहुँचकर मंत्री बोला-

राजकुमार! महाराज ने तो तुम्हें प्राण दण्ड दिया है किन्तु तुम मेरे स्वामी हो। मेरा हाथ तुम पर नहीं उठता। तुम यहाँ से दूर, इतनी दूर चले जाओ कि तुम्हारी खबर भी न आ सके। कहीं जाकर नाम बदल लेना और गुप्त रूप से अपना जीवन व्यतीत करना।

राजकुमार ने मंत्री का आभार माना और वहाँ से चलकर राजा जयवर्मा की राजधानी पाटलिपुत्र जा पहुँचा। नगर नरेश जयवर्मा के यहाँ एक साधारण सेवक के रूप में अपने दिन व्यतीत करने लगा।

सुवर्णदेवी के गर्भ की बात घर से परिवार और परिवार से नगर में फैल गई। लोग उसका तिरस्कार करने लगे। राजपुत्र तोसल के प्राणदण्ड का समाचार भी उसे मिल गया। इस समाचार से तो उसका दिल ही बैठ गया। उसके तिरस्कृत-अपमानित जीवन में जो एक आशा की किरण थी, वह भी लुप्त हो गई। एक रात वह घर से निकल गई। वन में पहुँचते ही उसे एक सार्थ मिला जो पाटलिपुत्र जा रहा था। वह भी उसके साथ चलने लगी किन्तु गर्भ भार के कारण उसकी गति मन्द थी। वह बहुत पीछे रह गई और मार्ग भूल गई। दिन-भर इधर-उधर भटकती रही। भूख-प्यास से उसका हाल-बेहाल हो गया। कभी पिता की स्मृति करके रोती और कभी माता की। दिन इसी प्रकार बीता

और रात आई। उसे प्रसव वेदना होने लगी। उसने वहीं एक पुत्र-पुत्री युगल को जन्म दिया।

प्रसव कष्ट से छुटकारा पाने के बाद वह सोचने लगी— **इनके पालन-पोषण के लिए तो जीवित रहना ही पड़ेगा, अन्यथा बाल-हत्या का दोष लगेगा।** यह सोचकर उसने तोसल राजपुत्र की नामांकित मुद्रिका तो पुत्र के गले में पहनाई और अपनी नामांकित मुद्रिका पुत्री के गले में। अपने वस्त्र को फाड़कर उसने दोनों नवजात शिशुओं को अलग-अलग बाँधा और फिर दोनों की एक पोटली बना दी। अब उसे अपनी वस्त्र-शुद्धि की चिन्ता हुई। शिशुओं को वहीं छोड़कर समीप की नदी में जाकर वस्त्र धोने लगी।

उसी समय एक सद्यःप्रसूता भूखी बाघिन आई और उस पोटली को मांसपिंड समझकर ले भागी। पुत्री किसी तरह मार्ग में गिर गई। दैवयोग से राजा जयवर्मा का दूत वहाँ से निकला और बालिका को उठा ले गया। बालिका उसने अपनी पत्नी को सौंप दी।

बाघिन ज्योंही अपनी कन्दरा के मुख पर पहुँची तो पाटलिपुत्र नगर का राजपुत्र शबरसिंह उधर से आ निकला। उसने बाघिन को बाघ समझकर तीर छोड़ दिया और बाघिन वहीं ढेर हो गई। समीप जाकर उसने पोटली को खोला तो नवजात मानव शिशु को देखकर दंग रह गया। उसने वह शिशु अपनी पत्नी को लाकर सौंप दिया। बाघ के पास से प्राप्त होने के कारण शिशु का नाम रखा गया व्याघ्रदत्त। आगे चलकर उसके बाल-साथियों ने इसका नाम रख दिया मोहदत्त। वह मोहदत्त के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ और माता-पिता द्वारा रखा नाम व्याघ्रदत्त लुप्त हो गया।

सुवर्णदेवी जब वस्त्र शुद्धि के बाद उस स्थान पर आई तो अपने शिशुओं को न देखकर शोक से मूर्च्छित हो गई। कुछ समय पश्चात् सचेत हुई तो विलाप करने लगी। परन्तु उस भयानक वन में कौन था जो उसको धीरज देता। स्वयं ही रो-धोकर चुप हो गई और आगे चलने लगी।

एक गाँव में जाकर उसने भोजन किया और फिर आगे चल दी। वह पाटलिपुत्र पहुँच गई और राजदूत के घर अपनी ही पुत्री की धाय बनकर रहने लगी। उसके गले की अँगूठी दूत की पत्नी ने पहले ही उतार ली थी; इस कारण वह अपनी पुत्री को न पहिचान सकी। पुत्री का नाम रखा गया वनदत्ता क्योंकि वह वन में प्राप्त हुई थी।

वनदत्ता धीरे-धीरे युवती हो गई, उसके अंग-प्रत्यंग विकसित हो गए।

बसन्त ऋतु युवक-युवतियों के मन में आनन्द और उमंग भर देती है। इसीलिए तो मदनोत्सव युवक-युवतियों का उत्सव माना जाता है। वनदत्ता भी मदनोत्सव में गई और मोहदत्त भी। दोनों ने एक दूसरे को देखा और आकर्षित हो गए। वनदत्ता का मनोभाव जानने के लिए मोहदत्त ने अपने साथियों से कहा—

भ्रमर भ्रमरी से कह रहा, कर गुंजारव नाद।
मिलन समय जो टल गया, तो होगा अवसाद।।

आकर्षित तो थी ही वनदत्ता; संकेत समझ गई। तुरन्त उत्तर दिया—

भ्रमर-भ्रमरी के मिलन का, हे संयोग आधार।
विरह-शंकिता भ्रमरी के, वह रही अश्रुधार।।

वनदत्ता की इस अन्योक्ति से उसकी धाय माता उसका मनोभाव समझ गई। बोली–

पुत्री! जल्दी से घर चलो माता-पिता प्रतीक्षा करते होंगे। उनकी आज्ञा लेकर पुनः आ जाना और रात भर मदनोत्सव मनाना।

धाय माँ के कथन का गूढ़ अभिप्राय वनदत्ता समझ गई। कुछ अनजान और नादान तो थी नहीं वह। मोहदत्त ने भी आशय समझा। वनदत्ता और मोहदत्त दोनों के हृदय-कमल खिल गए, मिलन की आज्ञा से। नेत्रों में ही संकेत करके चल दिए।

संध्या के समय वनदत्ता अपनी धायमाता सुवर्णदेवी के साथ उद्यान की ओर जा रही थी तो राज-मार्ग पर ही एक बाधा आ उपस्थित हुई। सामने राजपुत्र तोसल आ गया। वनदत्ता के विकसित यौवन को देखकर उसकी वासना जाग्रत हो गई। पीछे-पीछे चलने लगा उन दोनों के।

पुत्री तो पिता को पहचानती ही कैसे, उसने तो कभी उसे देखा तक नहीं था और पिता भी इस बात से पूर्णतया अनभिज्ञ था कि यह मेरी ही आत्मजा है। मैं ही इसका जनक हूँ। किन्तु न सुवर्णदेवी तोसल को पहचान पाई और न तोसल सुवर्णदेवी की। वृद्धावस्था के कारण इनमें इतना परिवर्तन आ चुका था कि एक दृष्टि में पहचानना कठिन था। फिर दोनों में से किसी को भी इस बात का स्वप्न में भी अनुमान न था कि जीवन में फिर कभी भेंट हो सकेगी। सुवर्णदेवी तो तोसल को मरा हुआ ही समझती थी। उसे विश्वास हो गया था कि मन्त्री ने राजाज्ञा का पालन करते हुए राजपुत्र के प्राण ले लिए हैं और तोसल उसे तो सुवर्णदेवी की स्मृति भी शेष नहीं थी।

धायमाता सुवर्णदेवी और बनदत्ता का पीछा करता हुआ तोसल उद्यान तक आ पहुँचा। एकान्त स्थान देखकर वह तलवार खींचकर खड़ा हो गया। दोनों स्त्रियाँ घबड़ा गई। वनदत्ता ने साहस करके पूछा-

मार्ग क्यों रोक रखा है? क्या चाहते हो?

तुम्हारा समर्पण। कदली निकुंज में चलो और मेरी इच्छा पूरी करो।

वाह रे ! काम ज्वर! पिता पुत्री से ही काम-सेवन करना चाहता है। किन्तु युवती वृद्ध को कैसे सह ले? मुँह बिचकाकर बोली–

अपने सफेद बालों की ओर देख बुड्ढे! शर्म नहीं आती ऐसी बात करते। तू मेरे पिता समान है।

पिता नहीं पति समान कह सुन्दरी! यदि मेरी इच्छा पूरी न की तो इस तलवार से तेरा सिर उड़ा दूँगा।

धायमाता ने रोकने की कोशिश की तो तोसल ने उसे तलवार दिखाकर चुपकर दिया। अब वनदत्ता समझ गई कि इस वृद्ध पर तो

काम का भूत चढ़ा हुआ है। जब तोसल ने उसका हाथ पकड़ा तो वह चिल्ला उठी–

कोई बचाओ, यह बुड्ढा मुझे तंग कर रहा हैं।

अबला के पास शोर मचाने के अतिरिक्त और उपाय भी क्या है? किन्तु यह उपाय है अचूक! उसका शोर सुनकर मोहदत्त दौड़ा आया। आते ही उसने ललकारा–

बुड्ढे! इस युवती का हाथ छोड़ और अपनी राह चला जा।

तोसल ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और बोला–

अभी दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं किशोर! क्यों बिना मौत मरना चाहता है? बीच में से हट जा।

मोहदत्त को भी क्रोध आ गया। उसने कहा–

तो नहीं मानेगा?

नहीं। ले सँभाल। यह कहकर तोसल ने तलवार का प्रहार कर ही दिया। मोहदत्त ने वार बचाया और ऐसा प्रहार किया कि तोसल का सिर कट कर दूर जा पड़ा। मोहदत्त के मुख पर विजय की मुस्कान चमकी और वनदत्ता कृतज्ञता से भर गई। मुस्कराकर मोहदत्त ने उसका हाथ पकड़ा और फुसफुसाकर धीमे से कहा–

आओ! इस कदली निकुंज में चलें। यहाँ एकांत है।

वनदत्ता तो राजी ही थी, चल दी। कदली निकुंज में पहुँचकर ज्योंही अभिसार को उद्यत हुआ त्यों ही उसे सुनाई पड़ा–

अरे मूर्ख! माता के सन्मुख करी पिता की घात।
अब करना चाहता भगिनी के साथ रमण बदजात।।

सुनते ही चौंक पड़ा मोहदत्त! इधर-उधर देखा, कोई मनुष्य नहीं। कदली कुंज के बाहर सिर्फ धायमाता बैठी थी और वह भी चुपचाप सोचा मेरा भ्रम है– **यहाँ है ही कौन।** दुबारा प्रवृत्त हुआ तो फिर आवाज आई–**अकार्य मत कर!**

कुछ क्षण के लिए विचार में पड़ गया मोहदत्त! कौन है जो मुझे रोकने का प्रयास कर रहा है? किन्तु सामने समर्पण करती हुई युवती और उसकी स्वयं की युवावस्था। यह विचार कैसे टिक पाते। कामबली ने जोर लगाया और वह फिर पाप कर्म की ओर आगे बढ़ा; तभी सुनाई दिया—

निर्लज्ज बाप को मार, बनता है भगिनी का भरतार।।

बार-बार के विघ्न से बौखला गया मोहदत्त। खिन्न होकर कदली निकुंज से निकल आया। उसने विचार किया—पहले इस बाधा से ही निपट लूँ फिर सुख से रमण करूँगा।

वह आवाज की दिशा में ही चल दिया। कुछ दूर जाकर उसे एक मुनि दिखाई दिये। नमन करके बैठ गया। मन के भाव मन में ही घुमड़ते रहे; पूछने का साहस न कर सका। उसके पीछे-पीछे सुवर्णदेवी और वनदत्ता भी आ गई और मुनिराज को नमन करके बैठ गई। मुनिराज स्वयं ही बोले—

भद्र! मैंने ही तुमको उस पाप से रोका है, शांतचित्त होकर मेरी बात सुनो—

कोसल नगरी में राजा कोसल राज्य करता था। उसका एक पुत्र था तोसल। उसी नगर में नंद सेठ रहता था। उसकी पुत्री का नाम था सुवर्णदेवी। सुवर्णदेवी का विवाह तो विष्णुदत्त के पुत्र हरिदत्त के साथ हुआ था किन्तु उसका पति विवाह के पश्चात् ही व्यापार हेतु लंका की ओर चला गया और फिर बारह वर्ष तक उसका पता न लगा।

एक दिन राजपुत्र तोसल और सुवर्णदेवी की आँखे चार हो गई। उनका सम्बन्ध चोरी-छिपे आठ माह तक चलता रहा। गर्भवती होने पर बात फूटी तो राजा ने तोसल को प्राणदण्ड की आज्ञा दी। किन्तु मन्त्री की उदारता से बच गया और यहाँ पाटलिपुत्र में आकर रहने लगा।

तिरस्कृत और अपमानित होकर सुवर्णदेवी को भी घर छोड़ना पड़ा। मार्ग में ही उसके एक पुत्र और पुत्री हुए। उसने तोसल की

नामांकित मुद्रिका तो पुत्र के गले में बाँधी और अपनी नामांकित मुद्रिका पुत्री के गले में। अपने वस्त्र को फाड़कर दोनों शिशुओं को एक पोटली में बाँध दिया। इसके बाद पोटली को वहीं छोड़कर वन-नदी के किनारे चली गई।

इतने में एक भूखी बाघिन आई और उस पोटली में माँसपिंड बँधा समझ कर ले भागी। मार्ग में बालिका गिर गई और पाटलिपुत्र का राजदूत उसे उठा लाया। वन में मिलने के कारण पुत्री का नाम वनदत्ता रखा गया।

शबरसिंह ने बाण से बाघिन को मार दिया और पुत्र उसे मिल गया। बाघ से प्राप्त होने के कारण शिशु का नाम रखा व्याघ्रदत्त किन्तु साथियों ने बदलकर मोहदत्त कर दिया।

सुवर्णदेवी को भी लौटने पर जब अपने शिशु न मिले तो भटकती हुई पाटलिपुत्र आ पहुँची और अपनी ही पुत्री की धायमाता बन गई।

मुनिराज ने मोहदत्त को सम्बोधित किया–

तुमने अभी जिस वृद्ध पुरुष को मारा था वह तुम्हारा पिता तोसल था जिसकी नामांकित मुद्रिका अब भी तुम्हारे पास है और वनदत्ता के पास उसकी माता सुवर्णदेवी की नामांकित मुत्रिका है। इस प्रकार तुम दोनों सगे भाई-बहन हो। अतः इस निंद्यकर्म को न करने के लिए ही मैंने तुम्हें सचेत किया था।

मुनिश्री के मुख से यथार्थ सुनकर सुवर्णदेवी की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। रोते-रोते बोली–

हाय मैं कैसी कुमाता हूँ कि अपनी ही पुत्री के कुमार्ग सेवन में सहयोगिनी बनी।

वनदत्ता का मुख भी मलिन हो गया। यह भी पश्चात्ताप की अग्नि में जल रही थी। किन्तु मोहदत्त का हृदय तो संसार से ही उचट गया। उसके हृदय में वैराग्य जाग उठा। अंजलि बाँधकर बोला–

मुनिवर! आपने मेरी आँखें खोल दीं। मुझे घोर पाप से बचा लिया । अब मुझे सुमार्ग दिखाइये।

मुनिराज ने उसे संसार और मोह का स्वरूप समझाकर कहा-

भद्र! यदि तुम्हारी इच्छा संसार-त्याग की हो तब तो श्रेष्ठ है अन्यथा विवेकपूर्वक दान-धर्म आदि शुभकार्य करते हुए और अशुभ कर्म हिंसा, चोरी, पर-दारा-रमण, असत्य, परिग्रह आदि से बचते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए जीवन यापन कर सकते हो।

नहीं गुरुदेव! मुझे तो अब संसार असार लगने लगा है। यदि मैं पात्र हूँ तो मुझे दीक्षा दे दीजिए।

मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। मुनिराज ने शांत गंभीर स्वर में कहा।

मोहदत्त उदास हो गया। बोला—

मुनिवर! क्या मेरे उद्धार का मार्ग बन्ध है? क्या मैं अपात्र हूँ? दीक्षा योग्य नहीं? संयम नहीं पाल सकता?

मुनिश्री ने सांत्वना दी—

उदास मत हो वत्स! तुम पात्र हो, संयम पालन कर सकते हो और तुम्हारा उद्धार भी होगा। किन्तु मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता क्योंकि मैं चारण मुनि हूँ।

चारण मुनि! यह कैसे होते है? मोहदत्त ने जिज्ञासा प्रगट की।

मुनिराज ने समझाया–

चारणमुनि वे होते हैं, जो आकाशगामिनी विद्या के धारी होते हैं। या तो वे विद्याधर होते हैं जो पूर्व में सिद्ध किए विद्याबल से आकाश गमन कर सकते हैं अथवा तपश्चर्या के फलस्वरूप उन्हें यह ऋद्धि प्राप्त हो जाती है।

क्रमशः

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1.	Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:		
	Vol - 1 (satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
	Vol - 2 (satakas 3- 6)		150.00
	Vol - 3 (satakas 7- 8)		150.00
	Vol - 4 (satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00
2.	James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)	Price : Rs.	100.00
3.	P. C. Samsukha - Essence of Jainism ISBN : 978-81-922334-4-4	Price : Rs.	15.00
4.	Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, ISBN : 978-81-922334-7-5	Price : Rs.	15.00
5.	Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani	Price : Rs.	15.00
6.	Ganesh Lalwani - Jainthology ISBN : 978-81-922334-2-0	Price : Rs.	100.00
7.	Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains ISBN : 978-81-922334-3-7	Price : Rs.	100.00
8.	Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India ISBN : 978-81-922334-5-1	Price : Rs.	100.00
9.	Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8	Price : Rs.	30.00
10.	Smt. Lata Bothra- The Harmony Within	Price : Rs.	100.00
11.	Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira	Price : Rs.	100.00
12.	Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity	Price : Rs.	100.00

Hindi :

1.	Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	20.00
3.	Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	30.00
4.	Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani	Price : Rs.	50.00
5.	Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira	Price : Rs.	60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad	Price : Rs.	250.00
	ISBN : 978-81-922334-8-2		
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal		
	ISBN: 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita		Price : Rs. 20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Putakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late. Sikhar Chand Churoria

Our Quality Product of :

Anusandhan	Bhaonagari Ghantia
Kolkata Nasta	Jocker
Badsha Khan	Lajawab
Picnic	Papri Ghantia
Raja	Rim Jhim
Shubham	Tinku

MANUFACTURED BY

M/s. K. K. Food Product
Prop. Anil Kumar, Sunil Kumar Churoria
P. O. Azimganj, Dist: Murshidabad
Pin No.- 742122, West Bengal
Phone No.: 03483-253232,
Fax No.: 03483-253566

KOLKATA ADDRESS:

36, Maharshi Debendra Road, 3rd Floor Room No.- 308
Kolkata - 700 006, Phone No.: 2259-6990, 3293-2081
Fax No.: 033-2259-6989, (M) 9434060429, 9830423668

TITTHAYARA
Vol XXXVI No.03
25th June 2012

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects . Interiors . Consultants

5B, Indian Mirror Street,Kolkata-700013
Phone No.-2227 5240/45, Fax :22276356
Email Id:info@nahardecor.com